[2006] SUPP. 10 S.C.R. 469 : 2006 INSC 979

संजय वर्मा

बनाम

मानिक राय तथा अन्य

दिसम्बर 8, 2006

(डा0 अरिजित पसायत तथा एस0एच0 कपाड़िया न्यायमूर्तिगण)

सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 - धारा 52 - सामान्य सिद्धांत - अभिनिर्धारितः कक्षीकार पक्षकार को मुकदमें के लम्बित रहने के दौरान प्राप्त हक की नोटिस लेने से छूट प्राप्त है - विचाराधीन वाद का सिद्धांत लोकनीति के बारे में है, जहाँ सद्भाव पैदा नही होता है - अन्तरिती वादकालीन डिक्री द्वारा बाध्य है क्योकि वह वाद का पक्षकार है - वाद का लंबित होना मात्र पक्षकारों मे एक पक्षकार को वादग्रस्त सम्पत्ति के बावत नही रोकता है - एक मात्र न्यायालय की अनुमति से अन्यसंक्रामित सम्पत्ति वाद मे पारित डिक्री के अन्तर्गत अन्य पक्षकारो के अधिकारों को प्रभावित कर सकता है- इस प्रकार उच्च न्यायालय का आदेश कि वादकालीन अन्तरितीगण को न्यायालय की अनुमति के बिना वाद मे पक्षकार के रूप में जोड़ा जा सकता है, अपास्त किया जाता है।

अपीलार्थी ने 1991 में वादग्रस्त सम्पत्ति के संबंध में विनिर्दिष्ट पालन हेतु वाद दाखिल किया था। वाद के लंबित रहने के दौरान, वर्ष 1993 मे वादगस्त सम्पत्ति को प्रत्यर्थीगण के पक्ष मे अन्तरित किया गया था। प्रत्यर्थीगण ने 2005 में वाद का प्रतिवाद करने के लिए पक्षकार बनाये जाने हेतु आदेश 1, नियम 10 (2) सि0प्र0सं0 के अधीन आवेदन दाखिल किया था। विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दोनो अन्तरितीगण ने न्यायालय की अनुमति प्राप्त किये बिना वाद दाखिल करने के बाद वादग्रस्त सम्पत्ति क्रय किया था तथा इस प्रकार अन्तरण वादकालीन हे तथा सम्पत्ति अंतरण अधिनियम 1882 की धारा 52 द्वारा बाधित है एवं पक्षकार बनाये जाने हेतु अनुरोध को नामंजूर किया था। उच्च न्यायालय ने यह धारित करते हुए इनके रिट याचिका को अनुज्ञात किया था कि प्रत्यर्थीगण विक्रेतागण वाद के पक्षकारगण नही थे तथा अपने हित की रक्षा करने के लिए प्रत्यर्थी का कोई अभ्यावेदन नही था तथा इसलिए इन लोगो को वाद में पक्षकारण के रूप में जोड़ा जाना आवश्यक है। अतः वर्तमान अपील प्रस्तुत है।

अपील अनुज्ञात करते हुए न्यायालय ने

अभिनिर्धारित कियाः 1.1 सम्पत्ति अंतरण अधिनियम 1882 की धारा 52 मे विनिर्दिश्ट सिद्धान्त साम्या, न्याय के शुद्ध अंतःकरण के अनुसार है क्योकि यह साम्यापूर्ण तथा न्यायसंगत बुनियाद पर निर्भर है कि सफल पर्यवसान के लिए अनुयोग या वाद लाना असंभव होगा कि अन्य संक्रामण को अभिभावी होने की अनुमति दी जाती है। वाद कालीन अंतरिती डिक्री द्वारा बाध्य है क्योकि वह वाद का पक्षकार है। सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 में सम्मिलित विचाराधीन वाद का सिद्धान्त लोकनीति का सिद्धान्त होने के नाते, सद्भाव या प्रामणिक होने का प्रश्न पैदा नही होता है। अधस्थ धारा 52 का सिद्धान्त यह है कि मुकदमा करने वाला पक्षकार को मुकदमे के लंबित रहने के दौरान प्राप्त हक की नोटिस लेने से छूट प्राप्त है। वाद का लंबित रहना मात्र पक्षकारो मे एक को वाद के विषय वस्तु का गठन करने वाले सम्पत्ति के बावत नही रोकता है। धारा एक मात्र इस शर्त की अभिधारणा करता है कि अन्यसंक्रामण किसी भी प्रकार किसी डिक्री के अन्तर्गत अन्य पक्षकार के अधिकारों को प्रभावित नही करेगा जिसे वाद में पारित किया जा सकता है जब तक सम्पत्ति का अन्य संक्रामण न्यायालय की अनुमति से नही किया जाता है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय का विचार कि प्रत्यर्थीगण विक्रेतागण वाद के पक्षकारगण नही थे तथ अपने हित की रक्षा करने के लिए प्रत्यर्थी का कोई अभ्यावेदन नही था तथा इसलिए इन लोगो को वाद मे पक्षकारगण के रूप में जोड़ा जाना आवश्यक हे, स्पष्ट रूप से असमर्थनीय है तथा अपास्त किया जाता है। (474-सी-एफ)

1.2 यह घिसी पिटी विधि है कि यदि व्यक्ति वाद का पक्षकार नही है, डिक्री इसे प्रभावित नही करती है जब तक कि निर्णय सर्ववंधी न हो तथा व्यक्तिबंधी नही।

(474-जी)

बीबी जुवैदा खातून बनाम नबी हसन साहेब तथा एक अन्य (2004) 1 एससीसी 191, सुभिन्न

सरविन्दर सिंह बनाम दलीप सिंह तथा अन्य (1996) 5 एससीसी 539; तथा धुरंधर प्रसाद सिंह बनाम जय प्रकाश विश्वविद्यालय तथा अन्य (2001) 6 एससीसी 534 निर्दिष्ट

सिविल अपीलीय अधिकारिता; सिविल अपील सं0 5664 वर्ष 2006

रि0 या0 (सी) सं0 943/2006 मे झारखण्ड उच्च न्यायालय राची के अंतिम निर्णय तथा आदेश दिनाक 19.04.2006 से।

एस0बी0 उपाध्याय, शिव मंगल शर्मा, आर0आर0 दूबे, संतोष मिश्रा, पवन उपाध्याय तथा शर्मिला उपाध्याय अपीलार्थी के अधिवक्तागण

रितेश सिंह, युनुस मलिक तथा प्रशांत चौधरी प्रत्यर्थीगण के अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय डा0 अरिजित पसायत, न्यायमूर्ति द्वारा सुनाया गया। अनुमति मंजूर की जाती है।

इस अपील मे सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 (संक्षेप मे सि0प्र0सं0) के आदेश 1 नियम 10 के अनुसार प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल आवेदन को अनुज्ञात करने वाले झारखण्ड उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायमूर्ति द्वारा पारित आदेश को चुनौती दिया गया है। आवेदकगण वाद के लंबित रहने के दौरान विवादित सम्पत्ति के अंतरितीगण है।

पृष्ठभूमि तथ्य संक्षेप में निम्नवत हैं :

अपीलार्थी ने राजेश्वरी देवी, प्रत्यर्थी सं0 3 के विरूद्ध संविदा के विनिर्दिष्ट पालन हेतु वाद दाखिल किया था। वाद हक वाद सं0 88 वर्ष 1991 के रूप में संख्याकित है। वाद में अनुरोध पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादी सं0 1 को निदेशित करते हुए समझौता दिनांक 25.12.1986 तथा 27.12.1990 के विविर्दिष्ट पालन हेतु प्रतिवादी के विरूद्व डिक्री के लिए था। आगे घोषणा इस आशय के संबंध में मागा गया था कि उक्त प्रतिवादी सं0 1 के पास प्रतिवादीगण 2, 3 तथा 5 के पक्ष में चार विक्रय विलेखों को निष्पादित करने का अधिकार नही था। वादी के शांतिपूर्ण कब्जे मे किसी भी प्रकार हस्तक्षेप करने से प्रतिवादीगण को अवरूद्ध करने हेतु स्थायी आदेश की भी माँग की गई थी।

वाद के लंबित रहने के दौरान आदेश 39 नियम 1 तथा 2 सपठित धारा 151 सि0प्र0सं0 के अनुसार आवेदन अपीलार्थी की ओर से अस्थायी व्यादेश हेतु दाखिल किया गया था। विद्वान अधीनस्थ जज - 1 धनवाद ने अपीलार्थी के पक्ष में अस्थायी व्यादेश अनुदत्त किया था। ब्यादेश का आदेश पारित होने के बाद, श्रीमती विनया देवी, प्रतिवादी (इसमे प्रत्यर्थी सं0 4) ने विक्रय विलेख दिनांक 16.03.1993 द्वारा मिहिर कुमार चक्रवर्ती के पक्ष में वादग्रस्त भूमि का एक हिस्सा अन्तरित किया था। प्रतिवादी संजय प्रसाद ने भी पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 13.07.1993 द्वारा श्याम कुमार दत्ता के पक्ष में वादग्रस्त भूमि का एक हिस्सा अन्तरित किया था। 03.12.1997 को उक्त श्याम कुमार दत्ता ने आगे पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 03.12.1997 द्वारा प्रत्यर्थी सं0 1 मानिक राय तथा मिहिर कुमार चक्रवर्ती के पक्ष में वादग्रस्त भूमि का एक हिस्सा अन्तरित किया था। प्रत्यर्थीगण ने वाद का प्रतिवाद करने के लिए पक्षकार

बनाये जाने हेतु तथा इन्हे लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति देने के लिए 20.08.2005 को आदेश 1,नियम 10 (2) सि0प्र0सं0 के अनुसार आवेदन दाखिल किया था। विद्वान अधीनस्थ जज ने अभिनिर्धारित किया कि श्रीमती अहिल्या झा तथा मानिक राय दोनो ने सर्व सम्मति से न्यायालय की अनुमति प्राप्त किये बिना 1991 के बाद वादग्रस्त सम्पत्ति को क्रय किया था तथा इस प्रकार अन्तरण वाद कालीन है तथा स्पष्ट रूप से सम्पत्ति अंतरण अधिनियम 1882 (संक्षेप मे सं0अ0 अधिनियम) की धारा 52 द्वारा वाधित है। आगे यह संप्रेक्षित किया गया था कि मानिक राय ने 03.12.1997 को सम्पत्ति क्रय किया था। अहिल्या झा आवेदिका ने 09.12.2000 को वादग्रस्त सम्पत्ति का हिस्सा क्रय किया था। इसलिए विचारण न्यायालय ने पक्षकार बनाये जाने हेतु अनुरोध को अ्रस्वीकार किया था।

आदेश दिनांक 16.01.2006 द्वारा व्यथित प्रत्यर्थीगण मानिक राय तथा अहिल्या झा ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दाखिल किया था जिसमे यह धारित करते हुए रिट याचिका अनुज्ञात किया था कि प्रत्यर्थीगण विक्रेतागण वाद के पक्षकारगण नही थे तथा इनके हित की रक्षा करने तथा प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई नही था तथा इसलिए इन्हे न्याय के उद्देश्य के लिए वाद मे पक्षकारगण के रूप मे शामिल किया जाना आवश्यक है।

उच्च न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया था कि विचारण न्यायालय ने तथ्य के परिणाम पर विचार नही किया था कि प्रत्यर्थीगण विक्रेतागण वाद के पक्षकारगण नही है तथा वाद में रिट याचीगण तथा इनके विक्रेतागण का कोई अभ्यावेदन नही था।

अपील के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि सं0अ0 अधिनियम की धारा 52 के परिणाम को पूर्णतया भूला दिया गया है।

दूसरी तरफ प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि वादी संजय स्व0 एम0एम0 शर्मा के पुत्र के अतिरिक्त कुछ नही है, जो अधिवक्ता था जो विनिर्दिष्ट पालन हेतु वाद में प्रतिवादी राजेश्वरी देवी के लिए उपसंजात हुआ था जिसकी डिक्री 23.12.1986 को उक्त राजेश्वरी देवी के पक्ष मे की गई थी। इसके कुछ दिनो के बाद स्व0 श्री एम0एम0शर्मा, अपीलार्थी के पिता तथा श्रीमती राजेश्वरी देवी के बीच व्यवसायिक संबंध का लाभ उठाते हुए प्रश्नगत समझौता निष्पादित किया गया था। संवयहारो की आवली रही है तथा न तो राजेश्वरी देवी न ही प्रत्यर्थीगण के विक्रेतागण ने विवादित किसी हित को प्रदर्शित किया था। ऐसा होने के नाते प्रत्यर्थीगण के हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है। इसलिए उच्च न्यायालय ने न्यायानुसार

मामले मे हस्तक्षेप किया है। बीबी जुवैदा खातून बनाम नवी हसन साहेब तथा एक अन्य (2004) 1 एससीसी 191 के पैरा 9 पर मजबूत भरोसा रखा गया है।

सं0अ0 अधिनियम की धारा 52 निम्नवत पठित है :-

" किसी वाद या कार्यवाहियो के बारे मे भारत के सीमाओ के अन्दर प्राधिकार रखने वाले किसी न्यायालय मे लम्बित रहने के दौरान जो दुसंधिपूर्ण नही है तथा जिसमे स्थावर सम्पत्ति के संबंध मे कोई अधिकार प्रत्यक्ष या विशेष रूप से प्रश्नगत है, वाद या कार्यवाही के किसी पक्षकार द्वारा सम्पत्ति का अन्तरण या अन्यथा विक्रय नही किया जा सकता है जिससे न्यायालय के प्राधिकार के सिवाय तथा इस प्रकार के निबंधनो पर जैसा अधिरोपित किया जाय किसी डिक्री या आदेश जिसे इसमे किया जा सकता है के अन्तर्गत इसके किसी अन्य पक्षकार का अधिकार प्रभावित हो।"

बीबी जुवैदा खातून का मामला (ऊपर) मे जिस पर प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने वास्तव मे भरोसा रखा था प्रत्यर्थीगण के आधार के विपरीत जाता है। यद्यपि पैरा 9 का सरसरी पठन प्रत्यर्थीगण द्वारा लिये गये आधार का समर्थन करता है, यह उल्लेखनीय है कि तथ्यात्मक स्थिति पूर्णतया भिन्न है। वास्तव मे इस मामले मे वाद मे प्रतीपवाद दाखिल किया गया है। प्रत्यर्थीगण वादकालीन अन्तरिती होने के नाते न्यायालय के अनुमति के बिना अधिकार के रूप मे वाद मे पक्षकार बनाये जाने की माँग नही कर सकता है जो वर्तमान मामले मे काफी लम्बे समय से लंबित है। वास्तव मे, निर्णय के पैरा 10 मे इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि पूर्णतया ऐसा कोई नियम नही है कि वादकालीन अन्तरिती को न्यायालय के अनुमति के बिना सभी मामलो मे लंबित वाद का प्रतिवाद करना चाहिए। सरविन्दर सिंह बनाम दलीप सिंह तथा अन्य (1996) 5 एससीसी 539 मे, पैरा 6 मे निम्नवत संप्रेक्षित किया गया था :

"6 सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 52 विचार करता है कि :

"किसी वाद या कार्यवाही जो दुसंधिपूर्ण नही है के बारे मे भारत की सीमा मे अधिकारिता रखने वाले किसी न्यायालय मे लंबित रहने के दौरान तथा जिसमे स्थावर सम्पत्ति के संबंध मे कोई अधिकार प्रत्यक्ष रूप से तथा विशेष रूप से प्रश्नगत है, वाद या कार्यवाही के किसी पक्षकार द्वारा सम्पत्ति का अन्तरण या अन्यथा विक्रय नही किया जा सकता है जिससे न्यायालय के प्राधिकार के सिवाय तथा इस प्रकार के निबंधनों पर जैसा अधिरोपित किया जाय, डिक्री या आदेश जिसे इसमे किया जा सकता है के अन्तर्गत इसके किसी अन्य पक्षकार का अधिकार प्रभावित हो।"

इसलिए यह स्पष्ट है कि वाद मे प्रतिवादीगण को धारा 52 के प्रवर्तन द्वारा सम्पत्ति का क्रय विक्रय करने से रोका गया था तथा न्यायालय के आदेश या प्राधिकार के सिवाय किसी प्रकार से अन्तरण या अन्यथा इसका विक्रय नही कर सकता है जिससे अपीलार्थी का अधिकार प्रभावित हो। सर्वसम्मति से, उन सम्पत्तियों के अन्य संक्रमण हेतु न्यायालय का आदेश या प्राधिकार प्राप्त नही किया गया था। इसलिए, अन्यसंक्रामण स्पष्ट रूप से धारा 52 के प्रवर्तन द्वारा विचाराधीन वाद के सिद्धान्त द्वारा बाधित होगा। इन परिस्थितियो मे, प्रत्यर्थीगण को वाद का आवश्यक या वास्तविक पक्षकार नही माना जा सकता है।''

धुरंधर प्रसाद सिंह बनाम जय प्रकाश विश्वविद्यालय तथा अन्य (2001) 6 एससीसी 534 मे यह निम्नवत उल्लेख किया गया था :

> ''7. संहिता के नियम 10 आदेश 22 के अन्तर्गत, जब वाद के लंबित रहने के दौरान हित का न्यागमन किया गया है, वाद न्यायालय के अनुमति द्वारा उन व्यक्तियो के विरूद्ध या द्वारा जारी रह सकता हैं जिस पर इस प्रकार का हित न्यागत जारी रह सकता है जिस पर इस प्रकार का हित न्यागत हुआ है तथा यह उस व्यक्ति को हकदार ठहराता है जिसने वाद को जारी रखने के लिये अनुमति हेतु न्यायालय मे आवेदन करने के लिए किसी अन्य हितबद्ध व्यक्ति या वादकर्ता या वादकालीन हित के न्यागमन का सृजन या समनुदेशन द्वारा मुकदमे के विषयवस्तु मे हित प्राप्त किया है। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि ऐसा करना इन पर बाध्यकारी हैं। यदि पक्षकार अनुमति की माँग नही करता है, वह स्पष्ट जोखिम उठाता है कि वाद का संचालन वादी द्वारा समुचित तरीके से अभिलेख पर नही किया जा सकता है तथा फिर भी, जैसा मोती लाल बनाम करीबुलदीन (आईएलआर (1898) 25 कलकत्ता 179) मे न्यायिक समिति के न्यायमूर्तिगण द्वारा बताया गया है वह मुकदमे के परिणाम द्वारा बाध्य होगा यद्यपि वह सुनवाई मे अभ्यावेदित नही है जब तक यह प्रदर्शित नही किया जाता है कि मुकदमे का संचालन समुचित तरीके से मूल पक्षकार द्वारा नही किया गया था या इसने विरोधी से दुस्संधि किया था। यह भी स्पष्ट है कि यदि व्यक्ति जिसने न्यागमन द्वारा हित प्राप्त किया है, वाद को जारी रखने के लिए अनुमति प्राप्त करता है, इसके हाथो मे वाद नया वाद नही है, क्योकि न्यायिक समिति के लार्ड किग्सडाउन ने प्राणनाथ राय चौधरी बनाम रूकिया बेगम (1857-60) 7 एमआईए 323) मे कहा, वाद हेतु को मात्र हक के अन्तरण द्वारा जारी नही रखा जाता है। यह इसके कहने पर जारी पुराना वाद नही है तथा वह

उस प्रक्रम तक सभी कार्यवाहियों द्वारा बाध्य है जब वह कार्यवाहियो को जारी रखने के लिए अनुमति प्राप्त करता है।''

सं0अ0 अधिनियम की धारा 52 में विनिर्दिष्ट सिद्धान्त साम्या, शुद्ध अंतःकरण या न्याय के अनुसार हैं क्योकि यह साम्यपूर्ण तथा न्यायपूर्ण बुनियाद पर आधारित है कि सफल पर्यवसान के संबंध में अनुयोग या वाद लाना असंभव होगा यदि अन्यसंक्रामण को अभिभावी होने की अनुमति दी जाती है। अंतरिती विचाराधीन वाद डिक्री द्वारा वाध्य है क्योंकि वह वाद का पक्षकार है। सं0अ0 अधिनियम की धारा 52 मे सम्मिलित विचाराधीन वाद का सिद्धांत लोकनीति का सिद्धान्त होने के नाते, सद्भाव का प्रश्न पैदा नही होता है। धारा 52 के अधस्थ सिद्धान्त यह है कि मुकदमा लड़ने वाले पक्षकार को मुकदमे के लंबित रहने के दौरान प्राप्त हक की नोटिस लेने से छूट प्राप्त है। वाद का लंबित रहना मात्र पक्षकारों में एक को वाद के विषयवस्तु को गठित करने वाले सम्पत्ति का क्रय विक्रय करने से रोकता नही है। धारा एक मात्र इस शर्त की अभिधारणा करता है कि अन्यसंक्रामण किसी भी प्रकार किसी डिक्री के अन्तर्गत अन्य पक्षकार के अधिकारो को प्रभावित नही करेगा जिसे वाद में पारित किया जा सकता है जब तक सम्पत्ति न्यायालय के अनुमति से अन्यसंक्रामित न किया गया हो।

उपरोक्त स्थिति होने के नाते, उच्च न्यायालय का विचार स्पष्ट रूप से असमर्थनीय है तथा अपास्त किया जाता है।

प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि चूॅकि ये लोग वाद के पक्षकारगण नही है, इनका हित खतरे मे पड़ जायेगा। यह घिसीपिटी विधि है कि यदि व्यक्ति वाद का पक्षकार नही है, डिक्री इसे प्रभावित नही करता है जब तक निर्णय सर्वबंधी न हो तथा व्यक्तिबंधी नही।

अपील अनुज्ञात किये जाने योग्य हे, जिसे हम निदेश देते है, लेकिन खर्चो के संबंध मे किसी आदेश के बिना।

अपील अनुज्ञात

(यह अनुवाद 02 शिवा कान्त तिवारी पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया)

This is certify that these are true and correct HIndi translated copies of judgement of PDF files available in eSCR. If any discrepancy is found at later stage. I shall be soely responsible for it.